International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(2): 34-35

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(2): 34-35
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-01-2018
Accepted: 28-02-2018

सुनील प्रसाद गौड
शोधछात्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वावार, उत्तराखण्ड, भारत

डॉ0 शिवशंकर मिश्र
संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वावार, उत्तराखण्ड, भारत

Correspondence
सुनील प्रसाद गौड
शोधछात्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वावार, उत्तराखण्ड, भारत

सनातन धर्म में प्रतिपादित यज्ञ की उपदेयता

सुनील प्रसाद गौड, डॉ0 शिवशंकर मिश्र

प्रस्तावना

भारत पुरातन काल से ज्ञान प्राप्ति द्वारा आध्यात्मिक उन्नति को ही अपना ध्येय समझता आया है। अपनी इस उन्नति के ध्येय के कारण इसको विश्व गुरू कहा जाता है। मनु ने स्पश्ट रूप से कहा है कि–

एतद्देष प्रसूतस्य सकाषादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः[1]।।

अर्थात्– पृथ्वी पर निवास करने वाले समस्त मानव इस पवित्र भारत भूमि में उत्पन्न ब्राह्मण बालक से अपने–अपने धर्म एवं चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें। आज भी इस गवेशणा प्रधान युग में भारतीय आर्यों के शिक्षा के मूल स्त्रोत वेदशास्त्रों के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ पुरातन सिद्ध नहीं हो सका है। वेद को आदर्श ग्रन्थ मानते हैं, क्योंकि वेद तो अनादि हैं। पाश्चात्त्य विद्धान भी इसे विश्व का सर्वप्राचीन ग्रन्थ स्वीकार करते है, वेद तो प्राणिमात्र के आदरणीय एंव सर्वतोमुखी उन्नति का उपदेशक, शिक्षा का अनुपम कोश ग्रन्थ है।

संसार में सनातम धर्म अपने संस्कृति संस्कार मर्यादा धर्मानुकल आचरण सभ्यता और पारमार्थिक के वैशिश्टय के लिए आज तक अपने पूर्ण गौरव से गौरवान्वित कर रहा है। जहाँ अनेक प्रचीन सभ्यताएँ और धर्म व्यवस्थाएँ अपनी एतिहासिकता को खो रही है, वहाँ एक मात्र हिन्दु समाज ही ऐसा है, जो आज भी प्राचीन धर्म व्यवस्था को बनाये रखने में समर्थ है। प्राचीन ऋशि मुनियों ने आपने त्याग–तपस्या–वैराग्य और उपासना के फलस्वरूप ईश्वर का सांनिध्य प्राप्त किया था। वे सामाजिक जीवन में परोपकार वृत्ति से अपना समय लगाते थे। आदर्श सामाजिक जीवन पालन करने पर समाज का जाति का देश का और विश्व का कल्याण होता है। यह समझकर देश और विश्व का कल्याण होता है। ऋशि मुनियो समाज व्यवस्था को वर्णाश्रम में विभक्त करके प्रत्येक वर्ण एवं आश्रम के धर्म को एक धार्मिक व्यवस्था में स्थापित कर दिया था। दैववर्णाश्रम धर्म की भित्ति पर आस्था रखकर आज तक सनातन धर्मालम्बी विभिन्न प्रकार के सामाजिक आचार तथा कर्तव्यों का पालन कर सनातन धर्म की एकता और विशेषता की मर्यादा का संरक्षण करने में समर्थ है।

जन्म से लेकर मृत्यु के उपरान्त भी शोडश संस्कारों एवं श्राद्ध आदि कृत्यों का समावेश हमारे सनातन धर्म समाहित है। संस्कारों के द्वारा दोशों का परिमार्जन हो जाता है।

गार्भौ र्होमै र्जातकर्म चौड मौन्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यतेः।
स्वाध्यायेन व्रतेर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः[2]।

गर्भाधान संस्कार जातकर्म चुड़ाकर्म और मौन्जीबन्धन इनमें के होमों (यज्ञों) से द्विजों के गर्भ और बीज के दोशादि की शुद्धि होती है। वेदत्रयी, पढ़ना, व्रतहोम, इज्याकर्म, पुत्रोत्पादनादि तथा पंच्चमहायज्ञों और यज्ञों से यह तनु ब्राह्मी होता है। क्योंकि गर्भ शुद्विकारक हवन जातकर्म मुण्डन उपनयन आदि संस्कारों से ब्राह्मणों के वीर्य एवं गर्भ से उत्पन्न दोश नश्ट हो जाते है।

दानं स्वधर्मो नियमोयमष्चः।
श्रुतं च कर्माणि च सद्वतानि।

सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः[3]।।

अर्थात यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, स्वधर्म, संयम, सद्व्रत तथा संतानादि सार्थकता देहेन्द्रिय प्राणान्तः करण की निर्मलता और निश्चलतारूप समाधि के रूप में संनिहित है। वैदिक संस्कृति में संस्कारों से तीनों शरीरों का शोधन होता है। लौकिक पारलौकिक उत्कर्शरूप अभ्युदय सुलभ होता है। निःश्रेयसरूप मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव इस लोक में एवं मृत्यु के बाद परलोक पवित्र करने वाले ब्राह्मणादि वर्णों का गर्भाधनादि शरीर संस्कार वेद मंत्रों से होना चाहिये।

सनातन धर्म में जो वर्णव्यवस्था आदि में विश्वास नहीं रखते, वे प्रकृतिपरक नियमों का विभेदन करते हैं, एवं आत्मानुभूति ईश्वरीय कृपा का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि वे संसारीक क्रिया जैसे–चोरी, भय, चिन्ता, हिंसा, भ्रम, झूठ, काम, क्रोध, जुआ, शराब आदि अठ्ठारह अनर्थो के अर्थ यानि की फल से पुरूशार्थी नहीं बन सकते। सत्य, अंहिसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप यम संज्ञक मानव धर्म को सनातन वर्णव्यवस्था के बिना जीवन में कुछ भी कर पाना असंभव सा प्रतीत होता है। इसलिए सनातन धर्म वर्ण व्यवस्था के प्रति आस्था न रखने वाले व्यक्ति पुरूशार्थ हीन एवं पशुओं जैसा जीवन यापन करने के लिए बाध्य है।

प्राचीन काल में यदि वर्णाश्रम आश्रम पद्वति के अनुसार किसी का कोई संस्कार न पाता था। तो वह व्यक्ति के अधिकारों से वंचित समझ जात थे।

आज के युग में भी शिक्षा को अनिवार्य बनाने की योजना उसी प्राचीन परम्परा की ओर संकेत करती है। इस बात से ये स्पश्ट होता है, कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य अर्थात् पचहत्तर प्रतिशत लोग उस युग में शिक्षित ही नहीं होते थे। अपितु वे राश्ट्र में संस्कृत या संस्कारवान् कहलाने के अधिकारी भी होते थे। वर्णाश्रम अवस्था भारतीय जीवन का मेरूदण्ड था। यह हमारे जीवन के उत्कर्श की ध्वजा समझी जाती थी। कुछ आधुनिक शिक्षा के आलोक में अपने को प्रबुद्ध मानने वाले भ्रान्त लोग इस व्यवस्था को हमारी सात सौ वर्शों की गुलामी का कारण बतलाने का साहस करते है। किंतु प्राचीन काल में आक्रमण हुए उनसे सुरक्षित रखने की क्षमता इसी वर्णवस्था में थी। इस वर्णाश्रम धर्म को मानने वालो में स्वधर्म के प्रति गर्व और गौरव की भावना इतनी अधिक थी कि वे दूसरों की उपेक्षा अपने को श्रेश्ठ समझते थे। भगवान श्रीकृश्ण गीता में कहते हैं।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धार्मात्स्वनुश्ठिनात्।
स्वधर्म निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः[4]।।

अर्थात्– अपने नियत कर्मों को भी भी दोशपूर्ण ढंग से सम्पन्न करना भी अन्य के कर्मों को भली भांति करने से श्रेयस्कर है। स्वीय कर्मों करते हुए मरना पराये कर्मों में प्रवृत्त होने की उपेक्षा श्रेश्ठकर है, क्योंकि अन्य किसी के मार्ग का अनुसरण भयावह होता है। मार्ग का अनुसरण भयावह होता है।

यज्ञ सनातन धर्म के मूलाधार होने के साथ–साथ, इसके विविध स्वरूप है। बहुत से लोग विविध दान पुण्य के अनुसार अपनी सम्पत्ति का यजन करते है। धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, अतिथिगृह, अनाथालय, विद्यापीठ, आश्रम, अस्पताल, वृद्वाश्रम आदि का दान–द्रव्यमय यज्ञ है। चान्द्रायण, तपस्या, चातुर्मास्य आदि विविध तप करते हैं और निवास स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र गमन नहीं करते हैं। ऐसे परित्याग तपोमय यज्ञ कहलाते हैं। जो लोग हठयोग, अश्टांगयोग, आदि की प्राप्ति के लिए तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हैं–ऐसा कर्म, योगयज्ञ है। जो वेद, पुराणादि साँख्य वेदान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, वह स्वाध्याययज्ञ कहलाता है[5]।

गीता के चतुर्थ अध्याय का सार ही सनातन योग पद्धति कहलाती है। इसमें दो तरह के यज्ञ किये जाते हैं। द्रव्ययज्ञ, आत्मयज्ञ। आत्मयज्ञ विशुद्ध आध्यात्मिक यज्ञ है। यदि आत्मा साक्षात्कार के लिए द्रव्ययज्ञ नहीं किया जाता तो ऐसे यज्ञ भौतिक बन जाते हैं। किन्तु जब कोई यज्ञ आध्यात्मिक उद्देश्य या भक्ति में करता है, तो वह पूर्ण यज्ञ है[6]। अर्जुन ने भगवान श्री कृश्ण से गीता में कहा कि आत्मा परम आद्य ज्ञेय हैं। आप इस ब्रह्माण्ड के परम आधार (आश्रय) हैं। आप अव्यय तथा पुराण पुरुश हैं। आप सनातन धर्म के पालक भगवान है यही मेरा मत है[7]। इससे ये स्पश्ट होता है, सनतान धर्म की पद्धति ही श्रेश्ठ यज्ञ है, किन्तु पाश्चात्त्य संस्कृति के प्रभाव से हमारा समाज दूशित होता जा रहा है। समाज को संस्कारित करना प्रत्येक सनातन धर्मानुरागियों का परम कर्तव्य होना चाहिए। यही श्रेश्ठ यज्ञ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. मनुस्मृति – 2/20
2. मनुस्मृति – 2/27–28
3. श्रीमद्भागवतमहापुराण – 11/23–46 गीता प्रेस
4. गीता – 3/35 भक्ति वेदान्त बुक द्रश्ट
5. गीता – 5/28 भक्ति वेदान्त बुक द्रश्ट
6. गीता – 4/अध्याय सार
7. गीता – 11/18